1935C **You are what you eat** (in Anekant 1957)

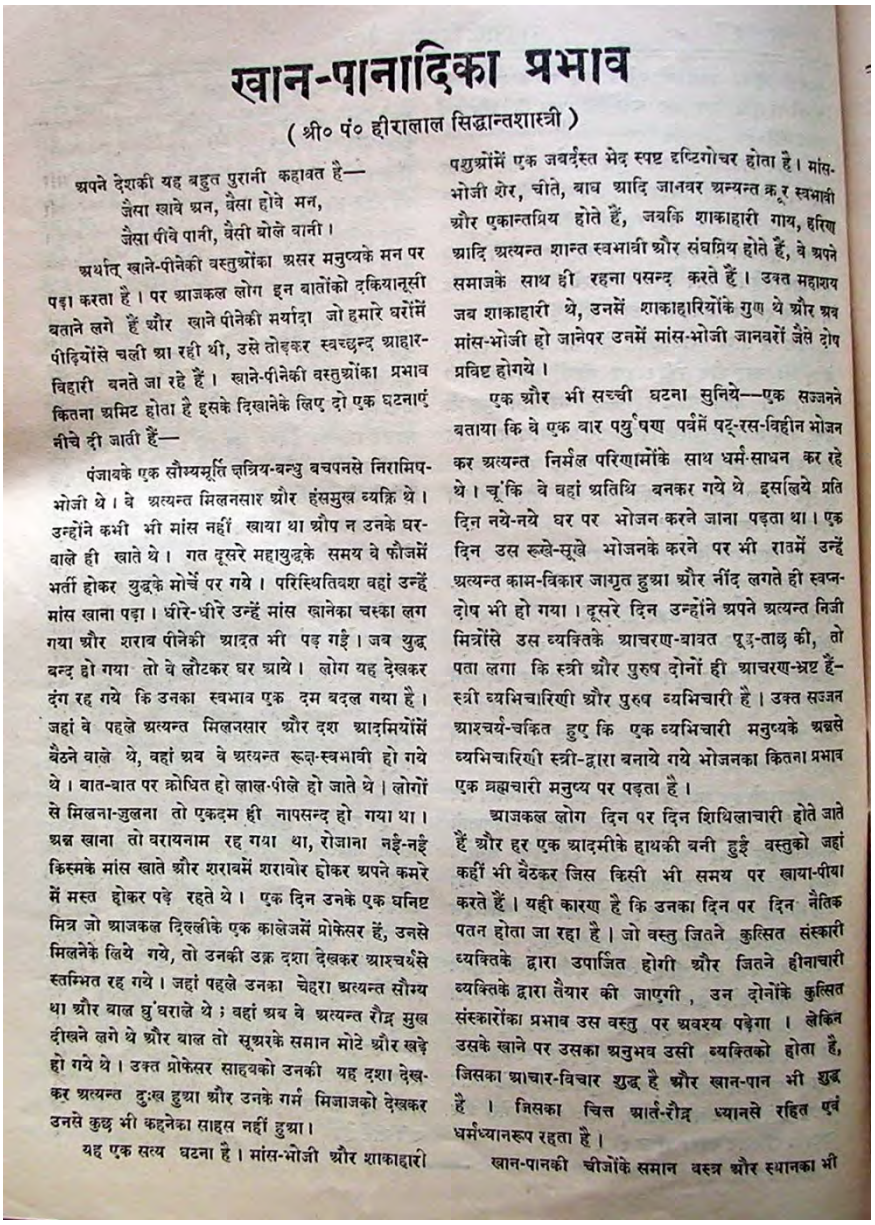

खान-पानादिका प्रभाव

(श्री० पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री)

अपने देशकी यह बहुत पुरानी कहावत है—

जैसा खावे अन, वैसा होवे मन,
जैसा पीवे पानी, वैसी बोले बानी।

अर्थात् खाने-पीनेकी वस्तुओंका असर मनुष्यके मन पर पड़ा करता है। पर आजकल लोग इन बातोंको दकियानूसी बताने लगे हैं और खाने पीनेकी मर्यादा जो हमारे घरोंमें पीढ़ियोंसे चली आ रही थी, उसे तोड़कर स्वच्छन्द आहार-विहारी बनते जा रहे हैं। खाने-पीनेकी वस्तुओंका प्रभाव कितना अमिट होता है इसके दिखानेके लिए दो एक घटनाएं नीचे दी जाती हैं—

पंजाबके एक सौम्यमूर्ति क्षत्रिय-बन्धु बचपनसे निरामिष-भोजी थे। वे अत्यन्त मिलनसार और हंसमुख व्यक्ति थे। उन्होंने कभी भी मांस नहीं खाया था औप न उनके घर-वाले ही खाते थे। गत दूसरे महायुद्धके समय वे फौजमें भर्ती होकर युद्धके मोर्चे पर गये। परिस्थितिवश वहां उन्हें मांस खाना पड़ा। धीरे-धीरे उन्हें मांस खानेका चस्का लग गया और शराब पीनेकी आदत भी पड़ गई। जब युद्ध बन्द हो गया तो वे लौटकर घर आये। लोग यह देखकर दंग रह गये कि उनका स्वभाव एक दम बदल गया है। जहां वे पहले अत्यन्त मिलनसार और दश आदमियोंमें बैठने वाले थे, वहां अब वे अत्यन्त रूक्ष-स्वभावी हो गये थे। बात-बात पर क्रोधित हो लाल-पीले हो जाते थे। लोगों से मिलना-जुलना तो एकदम ही नापसन्द हो गया था। अन्न खाना तो बरायनाम रह गया था, रोजाना नई-नई किस्मके मांस खाते और शराबमें शराबोर होकर अपने कमरे में मस्त होकर पड़े रहते थे। एक दिन उनके एक घनिष्ट मित्र जो आजकल दिल्लीके एक कालेजमें प्रोफेसर हैं, उनसे मिलनेके लिये गये, तो उनकी उक्त दशा देखकर आश्चर्यसे स्तम्भित रह गये। जहां पहले उनका चेहरा अत्यन्त सौम्य था और बाल घुंघराले थे; वहां अब वे अत्यन्त रौद्र मुख दीखने लगे थे और बाल तो सूअरके समान मोटे और खड़े हो गये थे। उक्त प्रोफेसर साहबको उनकी यह दशा देख-कर अत्यन्त दुःख हुआ और उनके गर्म मिजाजको देखकर उनसे कुछ भी कहनेका साहस नहीं हुआ।

यह एक सत्य घटना है। मांस-भोजी और शाकाहारी पशुओंमें एक जबर्दस्त भेद स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। मांस-भोजी शेर, चीते, बाघ आदि जानवर अत्यन्त क्रूर स्वभावी और एकान्तप्रिय होते हैं, जबकि शाकाहारी गाय, हरिण आदि अत्यन्त शान्त स्वभावी और संघप्रिय होते हैं, वे अपने समाजके साथ ही रहना पसन्द करते हैं। उक्त महाशय जब शाकाहारी थे, उनमें शाकाहारियोंके गुण थे और अब मांस-भोजी हो जानेपर उनमें मांस-भोजी जानवरों जैसे दोष प्रविष्ट होगये।

एक और भी सच्ची घटना सुनिये—एक सज्जनने बताया कि वे एक बार पर्युषण पर्वमें षट्-रस-विहीन भोजन कर अत्यन्त निर्मल परिणामोंके साथ धर्म-साधन कर रहे थे। चूंकि वे वहां अतिथि बनकर गये थे इसलिये प्रति दिन नये-नये घर पर भोजन करने जाना पड़ता था। एक दिन उस रूखे-सूखे भोजनके करने पर भी रातमें उन्हें अत्यन्त काम-विकार जागृत हुआ और नींद लगते ही स्वप्न-दोष भी हो गया। दूसरे दिन उन्होंने अपने अत्यन्त निजी मित्रोंसे उस व्यक्तिके आचरण-बावत पूछ-ताछ की, तो पता लगा कि स्त्री और पुरुष दोनों ही आचरण-भ्रष्ट हैं-स्त्री व्यभिचारिणी और पुरुष व्यभिचारी है। उक्त सज्जन आश्चर्य-चकित हुए कि एक व्यभिचारी मनुष्यके अन्नसे व्यभिचारिणी स्त्री-द्वारा बनाये गये भोजनका कितना प्रभाव एक ब्रह्मचारी मनुष्य पर पड़ता है।

आजकल लोग दिन पर दिन शिथिलाचारी होते जाते हैं और हर एक आदमीके हाथकी बनी हुई वस्तुको जहां कहीं भी बैठकर जिस किसी भी समय पर खाया-पीया करते हैं। यही कारण है कि उनका दिन पर दिन नैतिक पतन होता जा रहा है। जो वस्तु जितने कुत्सित संस्कारी व्यक्तिके द्वारा उपार्जित होगी और जितने हीनाचारी व्यक्तिके द्वारा तैयार की जाएगी, उन दोनोंके कुत्सित संस्कारोंका प्रभाव उस वस्तु पर अवश्य पड़ेगा। लेकिन उसके खाने पर उसका अनुभव उसी व्यक्तिको होता है, जिसका आचार-विचार शुद्ध है और खान-पान भी शुद्ध है। जिसका चित्त आर्त-रौद्र ध्यानसे रहित एवं धर्मध्यानरूप रहता है।

खान-पानकी चीजोंके समान वस्त्र और स्थानका भी

प्रभाव मनुष्यके ऊपर पड़ा करता है। इस विषयमें इसी दिसम्बर मासके 'कल्याण' में प्रकाशित उदासीन सन्त अनन्त श्री स्वामी रमेशचन्द्रजी महाराजके अनुभव ज्ञातव्य हैं। जिन्हें कल्याणसे यहां साभार उद्धृत किया जाता है—

दूसरे के वस्त्रों का प्रभाव

"आजकल लोग कहते हैं कि चाहे जिसका खा लो, पी लो और चाहे जिसका वस्त्र पहन लो, कोई हानि नहीं है। पर ऐसी बात नहीं है—मेरे जीवनकी एक घटना है। सन् १९४६ की बात है कि मैं एक बार लायलपुर, पंजाबमें गया हुआ था। वहां मैं एक रात्रिको श्री सनातनधर्मसभाके स्थान पर जाकर सोया। मैंने वहांके चपरासीको बुलाकर उससे कहा कि मुझे रात्रिको यहीं पर सोना है, इसलिए मुझे कोई बिलकुल ही नया बिस्तरा लाकर दो। चपरासीने मुझे एक बिलकुल ही नया बिस्तरा लाकर दे दिया। मैं उस नये बिस्तरेको बिछाकर सो गया। सोनेके पश्चात् सारी रात मुझे स्मशानघाटके स्वप्न आते रहे और मुर्दे आते तथा जलते दिखलायी पड़ते रहे। प्रातःकाल उठने पर मुझे बड़ी चिन्ता हुई कि आज ऐसे बुरे स्मशानघाटके स्वप्न क्यों मुझे दिखलाई पड़े। मैंने तुरन्त ही उस चपरासीको अपने पास बुलाकर उसे पूछा—'भाई! बताओ, तुम मेरे सोनेके लिए यह बिस्तरा कहांसे लाये थे?' उत्तरमें चपरासीने कहा कि 'महाराज! एक सेठजीकी माता मर गयीं थी, उठ सेठजीने अपनी मरी हुई माताके निमित्त यह नया बिस्तरा दानमें दिया था, वही मैंने आपको लाकर दे दिया। मैं समझ गया कि दान चूंकि प्रेतात्माके निमित्त दिया गया था, इसलिए उस दान किये हुए बिस्तरमें भी प्रेत-भावना प्रवेश कर गयी और इसीसे मुझे रात भर स्मशानघाटकी बातें दिखलाई पड़ती रहीं। इससे यह सिद्ध होता है कि जो कर्म जिस भावनासे किये जाते हैं, उसके संस्कार उसमें जाग्रत रहते हैं। इसलिए सबके हाथका खाना-पीना और सबके वस्त्रोंको काममें लेना कदापि उचित नहीं है।"

स्थान या वातावरणका प्रभाव

"वातावरण और स्थानका भी मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिस स्थानपर जैसा काम किया जाता है, वहां पर वैसा ही वातावरण उत्पन्न हो जाता है। इसका अपना अनुभव इस प्रकार है—मैं एक बार ऋषिकेश गया था और वहां एक रातको एक आश्रममें जाकर ठहरा। सो जाने पर मुझे रातभर पटवारियोंके सम्बन्धके स्वप्न आते रहे और कभी जमाबंदीकी बातें, तो कभी हिसाब-किताबकी बातें, जो पटवारी किया करते हैं, दिखलायी पड़ती रहीं। प्रातःकाल जागने पर मैं उस आश्रमके प्रबन्धकके पास गया और मैंने उनसे पूछा कि आपके इस स्थान पर अबसे पहले कौन आकर रहते थे? प्रबन्धकजीने बताया कि 'महाराज, इस स्थान पर ५-६ दिनों तक बराबर बहुतसे पटवारी आकर रहे थे और वे यहां पर जमाबंदीका काम करते रहे थे। मैं समझ गया कि बस, उन्हीं पटवारियोंके संस्कार इस कमरेमें रह गये हैं, जो मुझे रात भर सताते रहे। जहां मनकी सूक्ष्मता थी, वहीं उनका प्रभाव भी प्रकट हुआ। अतः हमारा मन चाहे जिस जगह बैठकर शुद्ध और स्थिर रह सकेगा, यह सोचना गलत है। सोच-समझकर और पवित्र वातावरण वाले स्थान में रहकर भजन-पूजन करनेसे ही मन लगेगा और लाभ हो सकेगा। जहां मांसाहारी रहते हों, जहां मांस-मछली, अंडे मुर्गे खाये जाते हों, और जहां गो-भक्षक लोग रहते हों, तथा जहां अश्लील गन्दे गाने गाये जाते हों, व्यभिचार होता हो, वहां भला मन कैसे शुद्ध रह सकता है और कैसे भजन बन सकता है।"

(कल्याण, दिसम्बर १९४६)

ऊपरके उद्धरणसे पाठक सहजमें ही जान सकेंगे कि खाने पीनेकी चीजोंके समान ओढ़ने पहननेके वस्त्रोंका और स्थानका भी असर हम पर पड़ता है। मनुष्यके जैसे पवित्र भाव तीर्थ क्षेत्रों पर होते हैं, वैसे अन्यत्र नहीं। इसका कारण यह है कि जिस भूमि पर रह कर साधु-सन्तों एवं तीर्थंकरादि महापुरुषोंने विश्वके कल्याणकी भावना की है, उनके पवित्र भावोंका असर वहांके पार्थिव परमाणुओं और वातावरण पर पड़ता है। उस स्थान पर जब कोई दूसरा व्यक्ति पहुँचता है, तब उसके मन पर उसका असर पड़ता है और उसकी बुरी और संक्लेश-पूर्ण मनोवृत्ति बदलने लगती है। इसके विपरीत जिस स्थान पर लोग निरन्तर जुआ खेलते रहते हैं, जहां वेश्याएँ और व्यभिचारिणी स्त्रियां दुराचार करती रहती हैं, वहांका वातावरण भी दूषित हो जाता है, और वहां जाने पर निर्मल मनोवृत्ति वाले भी मनुष्योंके मन मलिन होने लगते हैं। यही कारण है कि साधक एवं आराधकको द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की शुद्धि सर्वप्रथम आवश्यक बतलाई गई है।

खान-पानादिका प्रभाव

(श्री० पं० हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री

खाने-पीनेकी वस्तुओंका प्रभाव

अपने देशकी यह बहुत पुरानी कहावत है कि :-

'जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन,
जैसा पीवे पानी, वैसी बोले बानी।'

अर्थात् खाने-पीनेकी वस्तुओंका असर मनुष्यके मन पर पड़ा करता है। पर आजकल लोग इन बातोंको दकियानूसी बताने लगे हैं और खाने-पीनेकी मर्यादा जो हमारे घरोंमें पीढ़ियोंसे चली आरही थी, उसे तोड़कर स्वच्छन्द आहार-विहारी बनते जा रहे हैं। खाने-पीनेकी वस्तुओंका प्रभाव कितना अमिट होता है इसके दिखानेके लिए दो-एक घटनाएं नीचे दी जाती हैं—

पंजाबके एक सौम्यमूर्ति क्षत्रिय बन्धु बचपनसे निरामिष भोजी थे, वे अत्यन्त मिलनसार और हंसमुख थे। उन्होंने कभी भी मांस नहीं खाया था और न उनके घरवाले ही खाते थे। गत दूसरे महायुद्धके समय वे फौजमें भर्ती होकर युद्धके मोर्चे पर गये। परिस्थितिवश वहां पर उन्हें मांस खाना पड़ा। धीरे-धीरे उन्हें मांस खानेका चस्का लग गया और शराब पीनेकी आदत भी पड़ गई। जब युद्ध बन्द हो गया तो वे लौटकर घर आये। लोग यह देखकर दंग रह गये कि उनका स्वभाव एकदम बदल गया है। जहां वे पहले अत्यन्त मिलनसार और दस आदमियोंमें बैठने वाले थे, वहां अब वे अत्यन्त रूक्ष-स्वभावी हो गये थे। बात-बात पर क्रोधित हो लाल-पीले हो जाते थे। लोगोंसे मिलना-जुलना तो एकदम ही नापसन्द हो गया था। अब लोगोंका तो बराय नाम रह गया था, रोजाना नई-नई किस्मके मांस खाते और शराबमें सराबोर होकर अपने कमरेमें मस्त होकर पड़े रहते थे। एक दिन उनके एक घनिष्ठ मित्र जो आजकल दिल्लीके एक कालेजमें प्रोफेसर हैं, उनसे मिलनेके लिए गये, तो उनकी उक्त दशा देखकर आश्चर्यसे स्तम्भित रह गये। जहां पहले उनका चेहरा अत्यन्त सौम्य था और बाल घुंघराले, वहां अब वे अत्यन्त रौद्र मुख दिखने लगे थे और बाल तो सूअरके समान मोटे और खड़े हो गये थे। उक्त प्रोफेसर सा० को उनकी यह दशा देखकर अत्यन्त दुःख हुआ और उनके गर्म मिजाजको देखकर उनसे कुछ भी कहनेका साहस नहीं हुआ।

यह एक सत्य घटना है। मांस-भोजी और शाकाहारी पशुओंमें

एक जबरदस्त भेद स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। मांस-भोजी शेर, चीते, बाघ आदि जानवर अत्यन्त क्रूर-स्वभावी और एकान्तप्रिय होते हैं, जब कि शाकाहारी गाय, हरिण आदि अत्यन्त शान्त स्वभावी और संघप्रिय होते हैं व अपनी समाज के साथ ही रहना पसन्द करते हैं। उक्त महाशय जब तक शाकाहारी थे, उनमें शाकाहारियों के गुण थे और अब मांस-भोजी हो जाने पर उनमें मांस-भोजी जानवरों जैसे दोष प्रविष्ट हो गये।

एक और भी सच्ची घटना सुनिये — एक सज्जन ने बताया कि वे एक बार पर्युषण पर्व में षट्-रस-विहीन भोजन कर अत्यन्त निर्मल परिणामों के साथ धर्म-साधन कर रहे थे। चूंकि वे वहां अतिथि बन कर गये थे, इसलिए प्रतिदिन नये-नये घर पर भोजन करने जाना पड़ता था। एक दिन उस घर के-द्वारे भोजन के करने पर भी रात में उन्हें अत्यन्त काम-विकार जागृत हुआ और नींद लगते ही स्वप्नदोष भी हो गया। दूसरे दिन उन्होंने अपने अत्यन्त निकट हितैषी से उस व्यक्ति के आचरण-बाबत पूछ-ताछ की, तो पता लगा कि स्त्री और पुरुष दोनों ही आचरण-भ्रष्ट हैं — स्त्री व्यभिचारिणी और पुरुष व्यभिचारी है। उक्त सज्जन आश्चर्य-चकित हुए कि एक व्यभिचारी मनुष्य के अथवा व्यभिचारिणी स्त्री-द्वारा बनाये गये भोजन का कितना प्रभाव एक ब्रह्मचारी मनुष्य पर पड़ता है!

आज कल लोग दिन पर दिन शिथिलाचारी होते जाते हैं और हर एक आदमी के हाथ की बनी हुई वस्तुओं को जहां कहीं भी बैठकर जिस किसी भी समय पर खाया-पीया करते हैं। यही कारण है कि उनका दिन पर दिन नैतिक पतन होता जा रहा है। जो वस्तु जितने कुत्सित संस्कारी व्यक्ति के द्वारा उपार्जित होगी और जितने हीनाचारी व्यक्ति के द्वारा तैयार की जायगी — पकाई जायेगी, उन दोनों के कुत्सित संस्कारों का प्रभाव उस वस्तु पर अवश्य पड़ेगा। लेकिन उसके खाने पर उसका अनुभव उसी व्यक्ति को होता है, जिसका आचार-विचार शुद्ध है और खान-पान भी शुद्ध है, जिसका चित्त आर्त-रौद्र ध्यान से रहित एवं धर्मध्यानरूप रहता है।

खान-पानकी चीजोंके लेन-देन और स्थानका भी प्रभाव मनुष्य-के ऊपर पड़ा करता है। इस विषयमें ~~कल्याणके~~ इसी विषयपर लेखके 'कल्याण' में प्रकाशित

(ब्रह्मलीन सन्त अनन्त श्री स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज के अनुभव ज्ञातव्य हैं, जिन्हें ~~कल्याणसे~~ यहां साभार उद्धृत किया जाता है—

दूसरेके वस्त्रोंका प्रभाव

“आजकल लोग कहते हैं कि चाहे जिसका खा लो, पी लो और चाहे जिसका वस्त्र पहन लो, कोई हानि नहीं है। पर ऐसी बात नहीं है— मेरे जीवनकी एक घटना है। सन् १९४६ की बात है कि मैं एक बार लायलपुर, पंजाबमें गया हुआ था। वहां मैं एक रात्रिको श्री सनातनधर्मसभाके स्थानपर जाकर सोया। मैंने वहांके चपरासीको बुलाकर उससे कहा कि 'मुझे रात्रिको यहीं पर सोना है, इसलिए मुझे कोई बिलकुल ही नया बिस्तरा लाकर दो।' चपरासीने मुझे एक बिलकुल ही नया बिस्तरा लाकर दे दिया। मैं उस नये बिस्तरेको बिछाकर सो गया। सोनेके पश्चात् सारी रात मुझे श्मशानघाटके स्वप्न आते रहे और मुर्दे आते तथा जलते दिखलायी पड़ते रहे। प्रातःकाल उठने पर मुझे बड़ी चिन्ता हुई कि आज ऐसे बुरे श्मशानघाटके स्वप्न क्यों मुझे दिखलायी पड़े। मैंने तुरन्त ही उस चपरासीको अपने पास बुलाकर उससे पूछा—'भाई! बताओ, तुम मेरे सोनेके लिए यह बिस्तरा कहांसे लाये थे?' उत्तरमें चपरासीने कहा कि 'महाराज! एक सेठजीकी माता मर गयी थी, उन सेठजीने अपनी मरी हुई माताके निमित्त यह नया बिस्तरा दानमें दिया था, वही मैंने आपको लाकर दे दिया।' मैं समझ गया कि दान चूंकि प्रेतात्माके निमित्त दिया गया था, इसलिए उस दान किये हुए बिस्तरेमें भी प्रेत-भावना प्रवेश कर गयी और इसीसे मुझे रातभर श्मशान-घाटकी बातें दिखलाई पड़ती रहीं। इससे यह सिद्ध होता है कि जो कर्म जिस भावनासे किये जाते हैं, उनके संस्कार उनमें जाग्रत् रहते हैं। इसलिए सबके यहांका खाना-पीना और सबके वस्त्रोंको काममें लेना कदापि उचित नहीं है।”

स्थान या वातावरणका प्रभाव

“वातावरण और स्थानका भी मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिस स्थानपर जैसा काम किया जाता है, वहांपर वैसा ही वातावरण उत्पन्न हो जाता है। इसका मेरा अपना अनुभव इस प्रकार है— मैं एक बार ऋषिकेश गया था और वहां एक रात को एक आश्रममें जाकर ठहरा। सोनेपर मुझे रात भर पटवारियोंके सम्बन्धके स्वप्न आते रहे और ~~कभी~~ जमाबंदीकी बातें, तो कभी हिसाब-किताबकी बातें, जो पटवारी किया करते हैं, दिखलायी पड़ती रहीं। प्रातःकाल जागनेपर मैं उस आश्रमके प्रबन्धक के पास गया और मैंने उनसे पूछा कि आपके इस स्थानपर मेरे पहले कौन आकर

रहते थे। प्रबन्धकजीने बताया कि 'महाराज, इस स्थानपर ५-६ दिनों तक बराबर बहुत-से पटवारी आकर रहे थे और वे यहां पर जमाबंदीका काम करते रहे थे।' मैं समझ गया कि बस, उन्हीं पटवारियोंके संस्कार इस कमरेमें रह गये हैं, जो मुझे रातभर सताते रहे। जहां मनकी सूक्ष्मता थी, वहीं उनका प्रभाव भी प्रकट हुआ। अतः हमारा मन चाहे जिस जगह बैठकर शुद्ध और स्थिर रह सकेगा, यह सोचना गलत है। सोच-समझकर और पवित्र वातावरणवाले स्थानमें रहकर भजन-ध्यान करनेसे ही मन लगेगा और लाभ हो सकेगा। जहां मांसाहारी रहते हों, जहां मांस-मछली, अंडे और खाये जाते हों, और जहां गो-भक्षक लोग रहते हों, तथा जहां अश्लील गन्दे गाने गाये जाते हों, व्यभिचार होता हो, वहां भला मन कैसे शुद्ध रह सकता है और कैसे भजन बन सकता है?"

(कल्याण, दिसम्बर १९५६)

ऊपरके उद्धरणसे पाठक सहजमें ही जान सकेंगे कि खाने-पीनेकी चीजोंके समान ओढ़ने-पहननेके वस्त्रोंका और स्थानका भी असर हम पर पड़ता है। मनुष्यके जैसे पवित्र भाव तीर्थक्षेत्रोंपर होते हैं, वैसे अन्यत्र नहीं। इसका कारण यह है कि जिन स्थलपर रहकर साधु-सन्तों एवं तीर्थंकरादि महापुरुषोंने विश्वके कल्याणकी भावना की है उनके पवित्र भावोंका असर वहांके पार्थिव परमाणुओं और वातावरण पर पड़ता है। उस स्थान पर जब कोई दूसरा व्यक्ति पहुंचता है, तब उसके मनपर उसका असर पड़ता है और उसकी बुरी और संक्लेश-पूर्ण मनोवृत्ति बदलने लगती है। इसके विपरीत जिस स्थानपर लोग निरन्तर जुआ खेलते रहते हैं, जहां वेश्याएं और व्यभिचारिणी स्त्रियां दुराचार करती रहती हैं, वहांका वातावरण भी दूषित हो जाता है, और वहां जाने पर निर्मल मनोवृत्तिवाले भी मनुष्यों के मन मलिन होने लगते हैं। यही कारण है कि साधक एवं आराधकको द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी शुद्धि सर्वप्रथम आवश्यक बतलाई गई है।